REVIEW ARTICLE

ISSN:0976-4933
Journal of Progressive Science
Vol.07, No.01&02, pp 88-96 (2016)

पर्यावरणीय असन्तुलनः कारण एवं निदान

दिलीप कुमार श्रीवास्तव
भूगोल विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बलिया (उ0प्र0)

Abstract

The tendency of indivisual has brought about the environmental problem. The scientific and technical developments which have generally been anticipated to bring about the betterment in human life, have resulted into a new kind of problem related to the disturbance of nature's established order, either because of ignorance or because of the failure on the people in anticipating the other side of this development the evil side. However, it should be made clear that the responsbility of the presentcrisis can not be attributed to these development factors alone. The fact is that people themeselves are to be blamed who have gone a long way in consuming natural resources without taking into consideration its far reaching effects. On the one hand, the technical development have provided indivisual with the variety of ways and means for the physical comforts, on the other it has generated many crisis also. Processing of chemical prodcts, atomic programmes and mining are some of the projects where little ignorance and inefficiency may bring a great adverse result. After analysing the adverse effects and the valuable outputs of the technical and scientific developments, it comes automatically to mind whether these developmental programmes should be given away at once? A balance between the fulfilment of human needs and the ecology should be maintained by talking care of the use of developmental projects. If the proper choice of technology is not made and the apptopriate change is not brought about therein, there is a dangerous possibility of degradation of human society with the degradation of ecological and environmental balances.

परिचय

पारिस्थिक दृष्टिकोण से मानव विश्व का सबसे महत्वपूर्ण प्राणी है और जब से पृथ्वी पर मानव का अवतरण हुआ, तभी से वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रकृति का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि कि औद्योगिक युग से पूर्व मानव की आवश्कतायें कम थी, इसलिए प्रकृति का शोषण कम होता था किन्तु जैसे–जैसे मानव की आवश्यकताओं बढ़ती गयीं, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वह प्रकृति का अधिक से

अधिक शोषण करने लगा। फलतः प्रकृति में असामंजस्य स्थापित होने लगा और हमारा पारिस्थितिक संतुलन विगड़ता जा रहा है। पर्यावरण सम्बन्धों को दुरावस्था तक लाने वाली शक्तियाँ नई अथवा अपरिचित नहीं है। तकनीकी प्रगति में मानव सभ्यता इतनी अधिक व्यस्त है कि उसे इस ओर ध्यान देने तथा मूल्यांकन करने का समय ही नहीं मिला और इसी बीच पर्यावरणीय समस्याएं उग्र रूप धारण करती रहीं। विगत सौ वर्षो में मानव ने आर्थिक, भौतिक एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में प्रगति के लम्बे लम्बे डग भरे हैं। इसकी इन क्षेत्रों में प्रगति का मात्र एक ही उद्देश्य था, वह यह कि उसका स्वयं का कल्याण हो उसने इनके सम्पूर्ण पर्यावरण पर समाधानिक प्रभावों की ओर भी ध्यान नहीं दिया। कृषि में उसने केवल उन्हीं फसलों का चुनाव किया, जिन्हें वह पसन्द करता था तथा दूसरों को विनष्ट किया। औषधियों के प्रयोगों में इसका उद्देश्य संक्रामक, परजीवी तथा आहार सम्बन्धी पेट के रोगों, मानसिक विकारों तथा अन्य रोगों को नियंत्रित करने तक ही सीमित था। इसमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई, जिसके फलस्वरूप उसने अपनी आबादी में अत्यधिक वृद्दि कर ली। यद्यपि इसके द्वारा उसने अनायास ही यथार्थ में अवांछित जीन्स के संवहक व्यक्तियों का परिरक्षण कर आनुवंशिक रोगों की वृद्दि में ही सहयोग दिया है। मनुष्य ने सबसे चमत्कारिक प्रगति प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में की, जिसके फलस्वरूप पिछले सौ वर्षो में मनुष्य ने इतनी प्रगति कर ली है जितनी इसके पहले के अपने अस्तित्व की सम्पूर्ण अवधि में नहीं की थी। उसने अपनी सम्पदा को आवर्धित किया है तथा जीवन स्तर को ऊँचा उठाया है। इस कारण मनुष्य इस धारणा को भी प्रोत्साहना मिला कि प्रौद्योगिकी में सदा भलाई ही निहित रहती है और यही भावना पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय संकट का मूल कारण बनी। कारण कि इस प्रगति का मूल्य हमने पारिस्थितिकी की वृहद् समस्याएं उत्पन्न करके चुकायी हैं जो प्रदूषण, घटते वन्य–जीव, पर्यावरण के पेस्टनाशियों द्वारा विषकरण, विकिरण के जैवीय दुष्प्रभावों, अस्थिर पारिस्थितिक तंत्रों, प्राकृतिक सम्पदा के दुरूपयोग, जनसंख्या में असामान्य वृद्दि, लोगों को छोटे–छोटे में बढ़ती भीड़ के रूप में परिलक्षित होती है। यह सब व्यक्तिगत तथा सामाजिक पर्यावरण को न समझ पाने तथा मानव एवं पर्यावरण की परस्पर क्रिया–प्रक्रिया को न समझ पाने के फलस्वरूप ही हुआ है ;सिंह,1988द्ध।

पारिस्थितिक संकट को उत्पन्न करने में निम्नलिखित कारक सहायक सिद्ब हुए हैं–

1.जनसंख्या की अतिशय वृद्दि

पारिस्थितिक संकट उत्पन्न करने में सर्व प्रमुख जनसंख्या में अतिशय वृद्दि को माना जा सकता है। सन् 1830 में विश्व की कुल जनसंख्या केवल एक अरब थी जो 100 वर्षो ;1930द्ध में बढ़कर दो अरब हो गयी। मात्र 30 वर्षो के अन्तराल पर ही 1960 में जनसंख्या बढ़कर तीन अरब हो गयी। इतना ही नहीं बल्कि जनसंख्या में अगली एक अरब की वृद्दि मात्र 15 वर्षो में ही हो गयी अर्थात् 1975 में विश्व की जनसंख्या चार अरब हो गयी। पुनः 12 वर्षो के अन्तराल पर ही 1987 में जनसंख्या बढ़कर पांच अरब हो गयी। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या विभाग के आँकड़ों के अनुसार वर्तमान समय में विश्व की जनसंख्या 6.5 अरब से अधिक है और विभाग का अनुमान है कि सन् 2012 तथा 2050

तक विश्व की जनसंख्या बढ़कर क्रमशः 7 अरब हो जायेगी। केवल भारत में लगभग 1 करोड़ साठ लाख लोग प्रतिवर्ष बढ़ जा रहे है। विश्व की इस विशाल जनसूमह के जीवन को कायम रखने हेतु पर्याप्त भोजन एवं अन्य उपभोग की आवश्यकताओं का होना भी आवश्यक है। फलतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वृहद् स्तर पर संसाधनों का दोहन प्रारम्भ हो गया जो पारिस्थितिक तंत्र की शक्य क्षमता को पार करता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखना कठिन हो गया है। ;जमुआर एवम रविशंकर, 2005द्ध

2.साक्षरता में कमी

पारिस्थितिक संकट मात्र जनसंख्या वृद्दि का ही परिणाम नहीं है, अपितु यह जनसंख्या की गुणवत्ता पर भी निर्भर करता है कि वह संसाधनों का उपयोग करते समय पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने पर सजग है या नहीं। जिस समाज में अधिसंख्य लोग शिक्षित होते हैं, उनका व्यवहार एवं दृष्टिकोण ऐसा होता है जिससे वे कोई ऐसा कार्य नहीं करते जिसका दूरगामी कुप्रभाव हो। यदि उन्हें कभी अपने गलत व्यवहार का आभास होता है तो वे यथाशीघ्र उसका निराकरण करने को भी प्रस्तुत हो जाते हैं। इस प्रसंग में समाचार के प्रसार साधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस समाज में आधुनिक समाचार प्रसार जैसे अखबार, रेडियो, टेलीविजन आदि के सम्पर्क में रहने वाले लोग अधिक होते हैं, उसमें समस्याओं एवं विचारों के आदान–प्रदान से जन सामान्य के कार्य–व्यवहार में सजगता एवं एकरूपता अधिक मिलती है। यही कारण है कि विकसित देशों में, जहाँ साक्षरता शत्–प्रतिशत है तथा सभी लोग समाचार–पत्र, रेडियो दूरदर्शन आदि से जुड़े हैं, वातावरण के गहराते संकट के प्रति सजगता बड़ी तेजी से उभरी है एवं उनके परिस्थितिकी के संदर्भ में आचार–व्यवहार में शीघ्र परिवर्तन हुआ है। इसके विपरीत अल्प विकसित देशों में जहाँ निरक्षरता का साम्राज्य है, अधिसंख्य जनता समाचार पत्रों तथा अन्य संदेशवाहक साधनों से अछूती है, फलतः पारिस्थितिकी तंत्र में मानव के कार्यो के चलते अस्थिरता एवं असंतुलन में वृद्दि की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न होता जा रहा है।

3.आर्थिक विपन्नता

पारिस्थितिकी संकट को बढ़ाने में आर्थिक विपन्नताम महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऐसे अल्प विकसित देशों में जहाँ अधिकांश लोगों के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं हो पाती, पारिस्थितिकी सुंतलन को कायम रखने हेतु वन काटना, पशुओं को चराने हेतु खुला छोड़ देना, सीमान्त एवं कम उत्पादन क्षमता वाले क्षेत्रों में भी कृषि करना आदि असंगत कार्यो को रोकने की पहल करना निरर्थक लगता है, कारण कि जिस परिवार के पास रखने के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री न हो, उन्हें पहाड़ी ढ़ालो पर सीढ़ीदार अथवा चबूतरेनुमा खेत बनाकर खेती करने से रोकना या जिसके पास ईंधन खरीदने का कोई और साधन न हो, उन्हें जंगल की सूखी लकड़ी काटने से रोकना न्यायसंगत नहीं लगता। इस तरह का परिवार जो प्रत्येक तरह से अभाव में ही जी रहा हो, वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की बात सोचेगा एवं तदनुरूप कार्य करेगा न कि पारिस्थितिकी

संतुलन की बात सोचेगा। यही कारण है कि गरीब देशों की गरीब जनता जो दिन–रात किसी न किसी तरह भोजन एवं उपभोग की आवश्यक वस्तुओं को जुटाने में लगी रहती है, वह इसका परवाह कैसे कर सकती है कि अनुपयुक्त स्थान पर कृषि न करने अथवा जंगल की कटाई से पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ सकता है। यद्यपि कि यह सत्य है कि गरीब लोगों द्वारा पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न होता है, किन्तु उसके साथ ही साथ यह भी सत्य है कि इस पारिस्थितिकी संकट का सबसे पहले एवं सबसे अधिक शिकार ये गरीब लोग ही होते हैं। अतएव निर्धनता पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता का कारण भी है और परिणाम भी ;पाठक एवं श्रीवास्तव, 1991द्ध ।

4.उच्च भौतिक जीवन स्तर की प्रत्याशा

औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही मानव अपना भौतिक जीवन स्तर बढ़ाने हेतु सदैव तत्पर रहा है, जिससे भौतिकवादी जीवन–दर्शन अपनी जड़े मजबूत करता गया। आज का मानव केवल अपनी मूलभूत दैनिक उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त कर ही संतुष्ट नहीं है, बल्कि वह नये–नये विलासिता के साधनों एवं उपभोक्ता वस्तुओं की प्राप्ति में भी सचेष्ट रहता है। विकसित देशों में तो इसे '' उपभोक्ता–संस्कृति'' कहा जाने लगा है। अल्प विकसित देशों का धनी वर्ग भी इसके पीछे भाग रहा है। इस तरह के उच्च भौतिक जीवर स्तर को प्राप्त करने की लालसा ने अनेक तरह के कृत्रिम साधनों के उत्पादन को बढ़ावा दिया है जिसके फलस्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र को सुस्थिर एवं संतुलित रखने वाले जैव भू–रासायनिक चक्रों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। क्योंकि इन विविध पदार्थो के उत्पादन हेतु व्यापक स्तर पर जैव ईंधन एवं कच्ची सामग्री की आवश्यकता में वृद्वि हो गई है।

विकसित देशों में विश्व की कुल जनसख्ंया का 26 प्रतिशत भाग, कुल कैलोरी का 34 प्रतिशत उपभोग करता है। जबकि विश्व की 74 प्रतिशत आबादी देशों में कैलोरी का 66 प्रतिशत, ही उपभोग होता है। इस तरह स्पष्ट है कि अल्प विकसित देशों में अपेक्षाकृत शारीरिक स्वास्थ्य वृद्वि वाले तत्वों का कम उपभोग होता है। अन्य उपभोक्ता वस्तुओं में यह और अधिक बढ़ जाता है, जैसे विकसित देशों में विश्व के कुल इस्पात खपत का 74 प्रतिशत, व्यापारिक उर्जा का 80 प्रतिशत, कागज का 85 प्रतिशत एवं अन्य वस्तुओं का 86 प्रतिशत उपभोग होता है, जबकि अन्य विकासशील देशों की शेष 74 प्रतिशत जनसंख्या को इन वस्तुओं के क्रमशः 26, 20, 15 एवं 14 प्रतिशत का ही उपभोग करने को मिलता है। यह स्पष्ट है कि विकसित देशों में इतना अधिक उपभोग उच्च भौतिक जीवन स्तर से सम्बन्धित है यदि अल्प विकसित देशो में भी इन विविध वस्तुओं का उपभोग स्तर वही हो जाय जो विकसित देशों में है, तो पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता का कारण भी है और परिणाम भी ;पाठक एवं श्रीवास्तव,1991द्ध । उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि विकसित देशों में इतना अधिक उपभोग उच्च भौतिक जीवन स्तर से सम्बन्धित है यदि अल्प विकसित देशों में भी इन विविध वस्तुओं का उपभोग स्तर वही हो जाय जो विकसित देशों में है, तो पारिस्थितिकी तंत्र पर संसाधन दोहन का भार इतना अधिक बढ़ जायेगा कि जैव–भू–रासायनिक चक्र अस्त–व्यस्त हो जायेगें एवं इसका परिणाम यह होगा कि

प्राकृतिक जैविक वातावरण गम्भीर संकट में पड़ जायेगा और पारिस्थितिकी संकट और जटिल हो जायेगा।

5.औद्योगिकी एवं प्राविधिकी का तीव्र विकास

औद्योगिक एवं प्राविधिक विकास के चलते विश्व के संसाधनों का तीव्र दोहन प्रारम्भ हुआ। उद्योगों के केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर वायु प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गयी है। जल की आवश्यकता को देखते हुए अधिकांश उद्योग नदियों के किनारे स्थापित किए गए, किन्तु उद्योगों के निःसृत विषैले रसायनों से युक्त जल इन नदियों में गिराया जाता है, जिससे इन नदियों का जल प्रदूषित होता जा रहा है, जल चक्र प्रभावित हो रहा है एवं पीने योग्य शुद्व जल का अभाव होता जा रहा है। औद्योगिक विकास के फलस्वरूप नगरों का तीव्र विकास हुआ है और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संसाधन विभिन्न क्षेत्रों से मांगना पड़ता है। उद्योगों एवं नगरों में जिन वस्तुओं की खपत, उत्पादन या उपभोग होता है, उनसे पर्याप्त मात्रा में कचरा निःसृत होता है जिसे नदी–नालों में ही गिराया जाता है, जिससे जल अत्यधिक प्रदूषित होता जा रहा है। यही नहीं उत्पादन प्रक्रिया में कारखानों को चिमनियों ने निःसृत कार्बन डाई आक्साइउ, सल्फर डाई आक्साइड, राख, धूल–कण आदि वायु को प्रदूषित कर रहे हैं। वाहनो से निःसृत कार्बन मोनो आक्साइड आदि विषैली गैसें भी वायु को प्रदूषित कर रही है। ;रघुवंशी, अरूण एवं रघुवंशी, चन्द्रलेखा, 1987द्ध । अतः औद्योगिक एवं औद्योगिक एवं प्राविधिक विकास नगरीकरण एवं कारखानों के केन्द्रीयकरण के कारण पारिस्थितिकी पर अत्यधिक दबाव बढ़ता जा रहा है। अतः स्पष्ट है कि विकसित देश अपने उच्च जीवन स्तर को और अधिक ऊपर उठाने एवं अल्प विकसित देश गरीबी को दूर करने तथा विकसित देशों के समकक्ष आने के प्रयास में पारिस्थितिकी असंतुलन एवं अस्थिरता उत्पन्न कर रहे हैं। विकासशील देशों में वातावरण–प्रदूषण, निर्धनता एवं आवश्कयता की उपज है, जो सम्पन्न देशों में प्रचुरता एवं लालच का परिणाम है। हमारे सभी संसाधन भूमि, जल, वन, वायु आदि अर्थात् जीवन, स्वास्थ्य एवं कल्याण स्रतों को जितनी चुनौतियाँ मिल रही है, इसके पहले वैसी कभी नही हुई। प्रमुख प्राकृतिक संसाधनों में से प्रत्येक अविश्वसनीय रूप में इतनी दूतगति से क्षय की ओर बढ़ रहे हैं कि हर जागरूक व्यक्ति आश्चर्यचकित हो रहा है। उदाहरणार्थ अपने सर्वोत्तम जंगल समाप्त प्रायः हो रहे हैं। 12 प्रतिशत भूमि ही किसी प्रकार पादपों से ढकी रह गयी है, जबकि सरकारी संकल्प कम से कम 33 प्रतिशत भूमि का वनाच्छादित होना आवश्यक है। वानस्पतिक आवरण के इस प्रकार साफ होने के फलस्वरूप अन्येतर विभीषिकायें आक्रान्त करने लगी हैं। जैसी नदी–जल–प्लावन ;बाढ़द्ध, विभिन्न स्तरों पर नदी तलछतियों का रेत, मिट्टी आदि द्वारा पाटन, ढ़ालों पर भूमि का खिसकाव, मिट्टी के क्षरण एवं खारेपन में वृद्वि, जल–जमाव आदि। साथ ही कृषि योग्य भूमि का अपक्षरण, मरूभूमि का चतुर्दिक बढ़ाव तथा जलाभाव की आपदा तथा धरातलीय जल संतुलन में गिरावट के प्रारम्भ से कृषि उत्पादन में कमी होना आदि।

विगत दशकों में अनवरत वन विनाश के कारण न केवल वर्षा की मात्रा, भूमिगत जल के स्तर एवं स्रोतों में कमी आई है अपितु इसके चलते बाढ़, सूखा, भूस्खलन, भूक्षरण

एवं अन्य उपस्थितिक विक्षोभों में भी क्रमशः वृ(होती जा रही है। देश के पर्वतीय क्षेत्र हिमालय, विन्ध्य, अरावली एवं पश्चिमी घाट के इसके विशेष शिकार हैं। जहां स्पष्टतः विकास एवं विनाश की गतिविधियाँ साथ–साथा चल रही हैं। हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के चलते डायनामाइट एवं कुल्हाड़ी की धार उन पहाड़ियों को नंगा करती जा रही है जो कुछ दशक पहले तक सघन वनस्पतियों से आच्छादित थी। इस प्रकार केवल भारत में प्रतिवर्ष लगभग 15 लाख हेक्टेयर वनक्षेत्र नष्ट होते जा रहे हैं। ;सिंह एवं कुमरा, 1987द्ध । वन विनाश से उ त्पन्न परिस्थितिक संकट का सबसे अधिक प्रभाव बाढ़ एवं सूखा पर पड़ा है। बाढ़ एक व्यापक प्राकृतिक संकट है। अपने देश के उत्तरी पूर्वी एवं पूर्वी तथा दक्षिणी क्षेत्र बाढ़ से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित रहते हैं। उत्तर प्रदेश ;23.8 प्रतिशतद्ध, बिहार ;23.2 प्रतिशतद्ध एवं आंध्र प्रदेश ;15.4 प्रतिशतद्ध में क्षति की मात्रा अधिक होती है। इन तीनों राज्यों में देश में बाढ़ से हुई कुल क्षति का 62.4 प्रतिशत भाग की क्षति होती है। परिस्थितिक संकट से उत्पन्न सूखे की समस्या भी भारत में कम जटिल नहीं है। सूखा देश के 13 राज्यों ;67 जिलोंद्ध की कुल कृषि भूमि के 25 प्रतिशत क्षेत्र में विस्तृत हैं जिससे लगभग 12 प्रतिशत जनसंख्या प्रभावित है। उक्त क्षेत्र मुख्यता पश्चिमी एवं मध्यवर्ती राज्यों ;राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेशद्ध में फैले है। ऐसा देखा गया है कि सूखे से प्रत्येक तीसरे वर्ष इन क्षेत्रों की लगभग 30 लाख जनसंख्या अपने मवेशियों के साथ दूसरे क्षेत्रों में स्थानान्तरण कर जाती है तथा वहां की जनसंख्या को अस्त–व्यस्त कर देती है।

परिस्थितिक संकट के कारण भारत में भूस्खलन की समस्या भी गम्भीर होती जा रही है। भूस्खलन का सबसे बड़ा कारण वन विनाश एवं बाढ़ है। वनस्पतियों के नष्ट होने के कारण पर्वतीय ढाल भू पिण्ड को अपने साथ बनाये रखने में असमर्थ हो जाते हैं, फलस्वरूप भूस्खलन की सम्भावना बढ़ जाती है। चट्टान की प्रकृति, ढाल, वर्षा की मात्रा, ढाल की दिशा में मकानों एवं सड़कों का निर्माण भी भूस्खलन का कारण बनता है।

परिस्थितिकी असंतुलन से उत्पन्न समस्याओं के अतिरिक्त भारत में मरूस्थलीकरण, भूक्षरण, वायुमण्डलीय प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा सांस्कृतिक प्रदूषण जैसे जनसंख्या अतिरेक, गरीबी, गन्दी बस्तियाँ, ध्वनि प्रदूषण एवं अपराध में वृ(आदि की गम्भीर समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं।

पारिस्थितिकी असंतुलन से मरूस्थलीकरण में तीव्रगति से वृ(हो रही है। प्रो0 एस0एस0 ढाबरिया के अनुसार थार मरूस्थल अपना विस्तार अपने पूर्व में राजस्थान के मरू सीमान्तवर्ती भागों में करता जा रहा है और हो सकता है कि अगर यही स्थिति रही तो कालान्तर में इसका विस्तार उ0प्र0, बिहार एवं असम तक हो जायेगा। भूक्षरण के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति कम होती जा रही है। वायु प्रदूषण का प्रभाव सबसे अधिक औद्योगिकी नगरों में देखने को मिलता है। एक अनुमान के अनुसार अकेले दिल्ली में ही करीब 10 लाख वाहनों से रोज 170 टन हाइड्रोकार्बन, 80 टन नाइट्रोजन आक्साइड और 2 टन सल्फर डाई आक्साइड वायु में छोड़ी जाती है, जो सांस के साथ अन्द प्रेवश कर जाती है। पूरे देश में लगभग 4 लाख टन सल्फर डाई आक्साइड और कई टन कार्बन

डाई आक्साइड व अन्य विषैली गैसे वायुमण्डल में छोड़ी जाती है। बम्बई में राज 1000 से 1800 टन प्रदूषित तत्व वायु मण्डल में छोड़े जाते है। भारत में उपयोग में लेने वाले 70 प्रतिशत कीटाणु नाशक ऐसे हैं जिन्हें विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अति विषैले पदार्थों की श्रैणी में रखा गया है। इन वायु प्रदूषणों के कारण अब तो भारत में भी तेजाबी वर्षा का खतरा बढ़ गया है। यदि ऐसा हुआ तो इसका दुष्प्रभाव वनों, खेतों, नदियों, झीलों, फसलों, वनोपज एवं जलीय तंत्रों की उत्पादकता में कमी, स्थलीय एवं जलीय तंत्रों के जाति वैवध्य तथा प्रतिरोध में कमी, महत्वपूर्ण नदीय सूक्ष्म जीवों की सक्रियता में कमी और भौतिक पदार्थों के क्षरण के रूप में भुगतान करना पड़ेगा ;व्यास,1989द्ध ।

वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा में अत्यधिक वृf(के कारण के कारण पृथ्वी पर तापमान में वृf(होती जा रही है। पिछले लगभग सौ वर्षों में पृथ्वी का औसत तापमान 0.45 डिग्री सेल्सियत बढ़ गया है और कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा वायुमण्डल में इसी तरह बढ़ती जा रही तो 2050 ई0 तक इस धरती का औसत तापमान चार–पांच डिग्री सेल्सिय बढ़ जायेगी। पृथ्वी के सम्पूर्ण जीव जगत के लिए खतरा उत्पन्न हो जायेगा। कारण कि अत्यधिक तापमान के कारण पहाड़ों की बर्फ पिघल कर समुद्रों में आ जायेगी जिससे सागरों की सतह काफी ऊँची हो जायेगी और धरती का अधिकांश तटीय क्षेत्र जलमग्न हो जायेगा। धरती के बढ़ते तापमान का भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देशों पर ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। भारत एक ओर हिमालय की विपुल हिमराशि से घिरा हुआ है तो दूसरी ओर सागरों की अथाह जलराशि से बढ़ते तापमान के साथ एक ओर अधिकाधिक हिमराशि पिघलती जायेगी तो दूसरी ओर सागरों की सतह लगातार ऊँची होती जायेगी। इन परिस्थितियों के कारण भारत को प्रलय जैसे परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं (मुले, 1998A).

प्रयास

भारत में भी पर्यावरण संरक्षण संबंधी अनेक महत्वपूर्ण कार्य एवं योजनाएं चलाई जा रही है। भारत में एक वातावरण नियोजन एवं संयोजन की राष्ट्रीय समिति ;एन0सी0ई0पी0सी0द्ध की स्थापना की गयी है जो भारत में विकास हेतु समय–समय पर सरकार को परामर्श देती रहती है।

एन0सी0ई0पी0सी0 के अतिरिक्त नवम्बर 1980 में भारत सरकार द्वारा एक वातावरण विभाग की भी स्थापना की गई। इस विभाग का मुख्य रूप से वातावरण की गुणवत्ता में हास का लेखा जोखा रखना एंव विशाल आर्थिक विकास परियोजनाओं को वातावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से जाँच परख करना है। अब एन0सी0ई0पी0 वातावरण विभाग के परामर्शदात्री संस्था के रूप में कार्य करती है।

1981 में भारत सरकार द्वारा ''राष्ट्रीय संविकास परिषद'' की भी स्थापना की गई। यह भी एक परामर्शदात्री परिषद है, जिसका मुख्य कार्य ऐसे पारिस्थितिक तंत्रों की परख करना है जो खतरनाक स्थिति तक क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। ऐसे पारिस्थितिक तंत्रों के लिए यह परिषद ऐसी परियोजना की रूप रेखा तैयार करेगी जो न केवल पारिस्थितिक को सुरक्षा प्रदान करे अपितु स्थानीय प्रभावित लोगों की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करे।

निष्कर्ष

पारिस्थतिक संकट से छुटकारा पाने के लिए यद्यपि कि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक परियोजनाएं कार्य कर रही हैं तथा वैज्ञानिक भी अपने स्तर पर अध्ययन एवं शोध करने में लगे हुए हैं, किन्तु पारिस्थतिक संकट सम्बन्धी समस्या का समाधान जनमानस में यह भावना पैदा करनी होगी कि पर्यावरण प्रदूषण से न हमारे संसाधनों में ही असंतुलन स्थापित हो रहा है, बल्कि हमारा जीवन भी खतरे में पड़ता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं से जनता को परिचित कराना होगा ताकि जनता स्वयं इस पर नियंत्रण करें। चूंकि पर्यावरण का संबंध हमारे जीवन के प्रत्येक पहलुओं से है इसलिए हम जहाँ है, वहीं अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करें और पर्यावरण के दोहन में अतिशयता न आने दें। यही नहीं औद्योगिकी एवं नगरीय युग के पूर्व हमारे समाज में सादा जीवन उच्च विचार, अल्प आवश्यकताएं एवं इच्छाएं तथा ऊँचे नैतिक मूल्यों के फलस्वरूप मानव जीवन तथा प्रकृति में संतुलन बना रहता था। अतः इन बातों को हमें पुनेः अपने जीवन में लाना होगा। जिसके चलते मानव एवं प्रकृति के बीच स्वतः संतुलन बना रहेगा। पारिस्थितिक संकट से छुटकारा पाने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर विभिन्न प्रकार के सुरक्षात्मक उपायों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों का सहयोग आवश्यक है। इस दृष्टि से कार्यक्रम बनाते समय सामाजिक आर्थिक अवरोधों को ध्यान में रखना होगा। संरक्षण के उपाय एक स्थान से दूसरे स्थान पर भौगोलिक दशाओं, आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार बदल सकते हैं, परन्तु प्रत्येक दशा में पर्यावरण का विकास स्थान विशेष के सामाजिक, सांस्कृति और आर्थिक वातावरण के अनुरूप होना चाहिए। विकास के सभी कार्यक्रमों के क्रियावन्यन, पर्यावरण संकटों की दृष्टि से नाजुक क्षेत्रों में निर्माण कार्य तथा अंधाधुंध वनों की कटाई पर तात्कालिक प्रतिबन्ध लगाकर हम जन, पशु, फसल, भूमि एवं संचार तथा यातायात व्यवस्था आदि को नष्ट होने से बचा सकते हैं एवं साथ ही सहायता उपायों पर किए जाने वाले करोड़ों रूपये के व्यर्थ को भी रोक सकते हैं।

संदर्भ–सूची

1. *रघुवंशी, अरूण एवं रघुवंशी, चन्द्रलेखा (1987) पर्यावरण तथा प्रदूषण, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ–225–226*
2. *सिंह, जगदीश एवं कुमरा, वीरेन्द्र कुमार (1987) पर्यावरणीय संकटों का मूल्यांकन एवं उनके नियंत्रण के उपाय, भूविज्ञान, अंक–2, सं0–2, पृष्ठ–112–114*
3. *सिंह, जगदीश (1988) वातावरण नियोजन एवं संविकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, पृष्ठ–74*
4. *व्यास, श्याम मनोहर (1989) अंतरिक्ष में बढ़ते वायु प्रदूषण, योजना, वर्ष–33, अंक–8, पृष्ठ–7–8*
5. *पाठक, गणेश कुमार एवं श्रीवास्तव, दिलीप कुमार (1991) भारत में गरीबी के कारण एवं उसे दूर करने के उपाय, कुरूक्षेत्र, वर्ष–36, अंक–7, पृष्ठ–5*

6. मुले, गुणाकर (1998) जब धरती की सारी बर्फ पिघल जाएगी, साप्ताहिक हिन्दुस्तार, वर्ष–39, अंक–37, पृष्ठ–74
7. जमुआर, रविशंकर (2005) जनाधिक्य का गहराता संकेट, कुरूक्षेत्र, वर्ष–51, अंक–9, पृष्ठ–16

Received on 22.12.2016 and aceepted on 18.08.2017